एक फूटा थर्मामीटर और सविनय अवज्ञा

गोपालपुर नागेंद्रप्पा

चम्पारन में सविनय अवज्ञा आन्दोलन के बीज जर्मनी में बी.ए.एस.एफ. की प्रयोगशाला में बोए गए थे क्योंकि इतना सस्ता उत्पादन होने के बाद भारत के किसानों को नील का उत्पादन बन्द कर देना पड़ा था।

कभी-कभी कोई एक खोज सामाजिक व राजनैतिक घटनाक्रम पर गहरा असर डालती है। वैसे यह खोज शुरुआत में काफी महत्वहीन लगती है और कभी-कभी तो संयोग से हो जाती है। ऐसे सैकड़ों उदाहरण हैं। आधुनिक भारत के इतिहास में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण घटनाक्रम ऐसी ही एक खोज का परिणाम था। एक रासायनिक क्रिया के दौरान संयोगवश एक थर्मामीटर फूट गया। यकीन करना मुश्किल है कि जर्मनी की कम्पनी बी.ए.एस.एफ. की प्रयोगशाला में दुर्घटनावश टूटे एक थर्मामीटर ने भारत में सविनय अवज्ञा आन्दोलन की नींव रखी थी। दरअसल, इस रासायनिक क्रिया का उस समय कोई खास महत्व न था मगर समय के साथ नील (इंडिगो) के उत्पादन से इसका अटूट सम्बन्ध स्थापित हुआ।

नील का इतिहास

भारत के साथ नील का दोहरा



चित्र-1: जर्मनी के ड्रेस्डेन विश्वविद्यालय में मौजूद नील (इंडिगो)।

सम्बन्ध है। पहला तो यह है कि इस रंजक का अँग्रेज़ी नाम इंडिगो इस देश के आधार पर ही पड़ा है। माना जाता है कि नील सबसे प्राचीन प्राकृतिक रंजक है। 4000 वर्ष पूर्व के संस्कृत ग्रन्थों में इसका उल्लेख मिलता है। इसे पत्तियों से तैयार किया जाता था और कपड़े वगैरह रंगने में इस्तेमाल किया जाता था। मिस्र की ममियों के कपड़े भी नील से रंगे जाते थे। प्राचीन काल में भारत से यूरोप में आयातित हर चीज़ को लैटिन में इंडिकम और यूनानी में इंडिकोस कहा जाता था। धीरे-धीरे ये शब्द मात्र नील के लिए प्रयुक्त होने लगे। आगे चलकर यही इंडिगो बन गया। इंडियम एक तत्व भी है। इसका नामकरण इंडिया के आधार पर नहीं बल्कि इस आधार पर किया गया है कि इसके वर्णक्रम में नील (इंडिगो) वर्णक्रम के समान रेखाएँ दिखती हैं।

भारत के साथ नील का दूसरा सम्बन्ध राजनैतिक व सामाजिक है। खास तौर से उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में और बीसवीं सदी की शुरुआत में नील ने भारत के राजनैतिक व सामाजिक जीवन पर काफी असर डाला था। उस इतिहास की बात करने से पहले कृत्रिम रूप से नील के निर्माण पर एक नज़र डालना लाज़मी है।

नील संश्लेषण

बायर व उनके साथियों ने 1865 से शुरू करके 1880 में नील की रासायनिक संरचना पता लगा ली थी। इससे पहले 1868 में बायर के छात्र ग्रीब और लीबमैन एक अन्य प्राकृतिक रंजक एलिज़रीन का संश्लेषण प्रयोगशाला में कर चुके थे। इससे उत्साहित होकर बायर ने नील के संश्लेषण का काम हाथ में लिया



चित्र-2: बी.ए.एस.एफ. कम्पनी में नील का उत्पादन।

और संरचना पता लगने के दो साल के अन्दर संश्लेषण की कई विधियाँ खोज निकालीं। अधिकांश विधियों में संश्लेषण की शुरुआत आर्थो-नाइट्रोसिनैमिक एसिड से होती थी। आर्थो-नाइट्रोसिनैमिक एसिड का निर्माण पर्किन क्रिया के ज़रिए आर्थो-नाइट्रो बेंज़ल्डीहाइड से किया जाता था।

बी.ए.एस.एफ. का प्रवेश

बी.ए.एस.एफ. कम्पनी ने बायर से इन विधियों के अधिकार 1 लाख 20 हज़ार डॉलर में खरीद तो लिए मगर नील का व्यापारिक उत्पादन शुरू नहीं किया क्योंकि कृत्रिम नील की लागत प्राकृतिक नील से कहीं ज़्यादा बैठती थी। अलबत्ता बी.ए.एस.एफ. ने इस प्रोजेक्ट को तिलांजलि नहीं दी थी। इसका ज़िम्मा ह्यूमैन को सौंपा गया। ह्यूमैन ने 1890 में फिनाइल ग्लायसीन और पोटेशियम हायड्रॉक्साइड की क्रिया से नील बनाने की एक व्यापारिक विधि खोज ली। मगर यह भी पर्याप्त कार्यक्षम (लाभप्रद) नहीं थी। आगे चलकर ह्यूमैन ने ही 1893 में एक और विधि खोजी जो व्यापारिक लिहाज़ से अधिक सफल थी। इस विधि में शुरुआती पदार्थ एन्थ्रानिलिक एसिड था। देखा गया कि फिनाइल ग्लायसीन-आर्थो-कार्बोक्सिलिक एसिड का उपयोग ज़्यादा कारगर था और इससे अच्छी मात्रा में नील का उत्पादन होता था। अन्ततः 1897 में इस विधि के आधार पर बी.ए.एस.एफ. ने नील का उत्पादन शुरू किया। पता चलता है कि बी.ए.एस.एफ. ने नील संश्लेषण के विकास पर लगभग 60 लाख डॉलर खर्च किए थे। इससे स्पष्ट है कि नील उत्पादन करके यह कम्पनी कितना मुनाफा कमाने की उम्मीद कर रही थी। बाद में इस प्रक्रिया में और सुधार किए गए और एक ज़्यादा लाभदायक विधि विकसित की गई।

इस पूरे प्रयास में यह साफ हो गया था कि नील उत्पादन में एन्थ्रानिलिक एसिड की भूमिका महत्वपूर्ण है। वैसे आगे चलकर अन्य पदार्थों से भी नील उत्पादन सम्भव हुआ मगर शुरुआती व्यापारिक उत्पादन तो एन्थ्रानिलिक एसिड के दम पर ही सम्भव हुआ था। लिहाज़ा, एन्थ्रानिलिक एसिड का व्यापारिक उत्पादन बहुत महत्वपूर्ण था। इसे सम्भव बनाने में एक दुर्घटना का हाथ रहा। सैपर नाम का एक व्यक्ति नेफ्थलीन को गाढ़े गन्धक के अम्ल के साथ उबाल रहा था, तभी उसने एक थर्मामीटर फोड़ दिया और परिणाम आश्चर्यजनक थे।

टूटा थर्मामीटर

नेफ्थलीन कोल टार में पाया जाने वाला एक पदार्थ है। उन्नीसवीं सदी में यह एक अड़चन से ज़्यादा कुछ नहीं था। रसायनज्ञ नेफ्थलीन का कोई

उपयोग तलाशने में लगे थे। ऐसा ही एक प्रयास यह था कि नेफ्थलीन को गाढ़े गन्धक के अम्ल के साथ ऊँचे तापमान पर गलाया जाए और थैलिक एन्हाइड्राइड नामक पदार्थ बनाया जाए। थैलिक एन्हाइड्राइड एक महत्वपूर्ण औद्योगिक रसायन था। मगर नेफ्थलीन और गन्धक के अम्ल की क्रिया से थैलिक एन्हाइड्राइड पर्याप्त मात्रा में नहीं बनता था। अलबत्ता, लक्ष्य की प्राप्ति एक दुर्घटना से हुई। क्रिया के दौरान सल्फोनीकरण का तापमान नापने के लिए एक थर्मामीटर लगाया जाता था। किसी कारण से यह टूट गया और उसमें भरा पारा क्रियाकारी पदार्थों में जा मिला। अब वही क्रिया कहीं कम समय में और कम तापमान पर सम्पन्न हो गई और बढ़िया किस्म का थैलिक एन्हाइड्राइड पर्याप्त मात्रा में प्राप्त हुआ। इस तरह से थैलिक एन्हाइड्राइड बनाने की व्यापारिक विधि की 'खोज' हुई।

ह्यूमैन ने इस थैलिक एन्हाइड्राइड को आसानी-से एन्थ्रानिलिक एसिड में तब्दील कर दिया। दरअसल, उक्त प्रक्रिया में जब पारा गिरा तो वह गन्धक के अम्ल से क्रिया करके मर्क्यूरिक सल्फेट में बदल गया। मर्क्यूरिक सल्फेट इस क्रिया में अच्छा उत्प्रेरक साबित हुआ। इस विधि की खोज ने नील उत्पादन की लागत काफी कम कर दी। इस तरह से चम्पारन में सविनय अवज्ञा आन्दोलन के बीज जर्मनी में बी.ए.एस.एफ. की प्रयोगशाला में बोए गए थे क्योंकि इतना सस्ता उत्पादन होने के बाद भारत के किसानों को नील का उत्पादन बन्द कर देना पड़ा था।

तालिका - समय के साथ नील उत्पादन के क्षेत्रफल में बदलाव

वर्ष	क्षेत्रफल (एकड़ में)
1893-94	6,48,928
1896-97	5,82,200
1900-01	3,63,600
1902-03	2,55,500
1905-06	1,70,000



इंडिगोफेरा टिंक्टोरा

चम्पारन

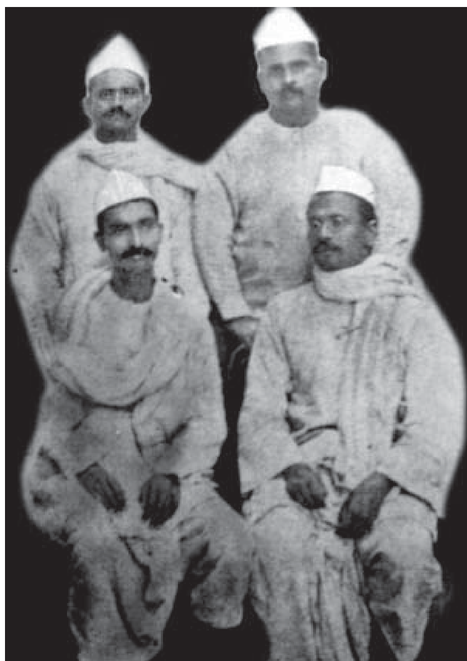
बाज़ार में कृत्रिम नील के आने से पहले नील की फसल *(इंडिगोफेरा टिंक्टोरा)* पर भारत का ही एकाधिकार था। भारत से यह रंजक यूरोप को निर्यात होता था। इस पौधे की पत्तियों से नील प्राप्त करने के लिए पहले पत्तियों को उबालकर उनका सत निकालना होता था और फिर इस सत को कुछ दिनों तक सड़ाया जाता था। नील की खेती और रंजक का उत्पादन बंगाल और बिहार के चम्पारन क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण आर्थिक गतिविधि थी। चम्पारन में खेती का काम रैयत (बटाईदार) द्वारा किया जाता था। कायदा यह था कि बटाईदार उसे दी गई ज़मीन के प्रति बीस काठा (लगभग एक एकड़) में से तीन काठा पर नील उगाएगा। इसे तीनकठिया प्रणाली कहा जाता था।

चम्पारन क्षेत्र में नील उगाने वालों की हालत पर महात्मा गाँधी ने लिखा था:

"मैंने नील के पैकेट तो देखे थे मगर मुझे यह भान तक न था कि चम्पारन क्षेत्र में हज़ारों किसान तकलीफें झेलकर इसका उत्पादन करते हैं।"

"रैयत इतने दलित और भयभीत हैं।"

"तीनकठिया प्रणाली के तहत रैयत अपनी सबसे बढ़िया ज़मीन ज़मींदार की फसल में खपाने को मजबूर है। वह इस फसल के लिए अपना सबसे बेहतरीन समय व ऊर्जा देता है..., नतीजा यह होता है कि उसके पास अपनी फसल, अपनी जीविका के लिए समय ही नहीं बचता।"



चित्र-3: यह ऐतिहासिक चित्र महात्मा गाँधी के सत्याग्रह आन्दोलन से जुड़े उन सभी मुख्य आन्दोलनकारियों के साथ 1917 में लिया गया था जिन्होंने चम्पारन के सत्याग्रह में भी अहम भूमिका निभाई थी।

"रैयत को अपनी जोत के 3/20 हिस्से पर ज़मींदार की मनचाही फसल बोना पड़ती है। इसके पीछे कोई कानूनी मान्यता नहीं है। रैयत लगातार इसके खिलाफ लड़े हैं और विवश होकर ही यह काम करते हैं। इस सेवा के बदले उन्हें पर्याप्त मेहनताना भी नहीं मिलता। मगर जब कृत्रिम नील के आगमन के कारण स्थानीय माल के भाव गिरे, तो ज़मींदारों ने नील के पट्टे (अनुबन्ध) निरस्त करने के प्रयास किए। इसके लिए उन्होंने एक तरीका खोजा ताकि नील उत्पादन में होने वाला घाटा रैयत पर थोपा जा सके। लीज़ की ज़मीन पर ज़मींदारों ने रैयत से 100 रुपए प्रति बीघा का तवान (यानी क्षतिपूर्ति) वसूल करना शुरू कर दिया। यह तवान नील उत्पादन की विवशता से मुक्ति के एवज में वसूला गया। रैयत का कहना है कि यह वसूली बलपूर्वक की गई। यदि रैयत नकद पैसे का प्रबन्ध न कर सके तो उनसे रुक्के लिखवाए गए, ज़मीनें गिरवी रखवाई गईं और 12 फीसदी ब्याज के साथ किश्तें वसूल की गईं।"

1890 के दशक में कृत्रिम नील के आगमन के साथ ही नील की फसल फीकी पड़ने लगी। यह मुनाफादायक धन्धा अब एक घाटे का सौदा बन गया। बटाईदारों को नील की खेती बन्द करनी पड़ी (देखें तालिका)। मगर इससे तीनकठिया प्रणाली के उनके दायित्व कम नहीं हुए। ऐसा लगता है कि बटाईदारों पर दबाव डाला गया कि वे ज़मींदारों को हो रहे नुकसान की भरपाई करें। नतीजा यह हुआ कि उनकी तकलीफें और बढ़ीं। स्थानीय

सरकार (जो ब्रिटिश शासन के अधीन थी) की कोई रुचि नहीं थी कि रैयत के कष्टों को दूर करे।

सविनय अवज्ञा

1916 तक हालात बदतरीन हो चुके थे। लगभग इसी समय गाँधीजी का ध्यान इस समस्या पर गया। 1917 में रैयत की ओर से हस्तक्षेप करने को वे चम्पारन पहुँचे और फैसला किया कि वे इस स्थित का अध्ययन करेंगे और जाँच करेंगे। सरकार को यकीन था कि इससे इलाके की शान्ति भंग होगी और आगे भी इसके गम्भीर परिणाम हो सकते हैं। लिहाज़ा, सरकार तत्काल हरकत में आ गई।

गाँधीजी के शब्दों में,

"उसने (पुलिस अधीक्षक के सन्देशवाहक ने) तब मुझे यह नोटिस थमाया कि मैं चम्पारन छोड़कर चला जाऊँ और मुझे अपने निवास (चम्पारन के एक गाँव बेतिया) तक गाड़ी से पहुँचा दिया। मैंने यह लिखकर दे दिया कि मेरा इस आदेश का पालन करने का कोई इरादा नहीं है और जाँच समाप्त होने तक मैं चम्पारन से नहीं जाऊँगा। इस पर मुझे सम्मान मिला कि चम्पारन छोड़ने के आदेश की अवहेलना करने का अपराध कबूल करूँगा। मगर अदालत में हाज़िर होकर सज़ा सुनने से पहले ही मजिस्ट्रेट ने मुझे एक लिखित सन्देश भेजा कि लेफ्टीनेंट गवर्नर ने आदेश दिया है कि मेरे खिलाफ मुकदमा वापिस ले लिया जाए। कलेक्टर ने मुझे लिखा कि मैं अपनी जाँच का काम करने को स्वतंत्र हूँ और मैं सरकारी अधिकारियों से भी मदद ले सकता हूँ। इस प्रकार से देश को सविनय अवज्ञा का पहला प्रत्यक्ष अनुभव मिला।"

तो, जर्मनी की बी.ए.एस.एफ. प्रयोगशाला में संयोग से टूटे एक थर्मामीटर ने सस्ते कृत्रिम नील का मार्ग प्रशस्त किया, जिसकी वजह से बंगाल व बिहार के लाखों लोग अपनी जीविका व आमदनी से हाथ धो बैठे। इससे उत्पन्न हुए कष्ट ने महात्मा गाँधी के नेतृत्व में सविनय अवज्ञा आन्दोलन को जन्म दिया।

गोपालपुर नागेंद्रप्पा: जैन यूनिवर्सिटी, बैंगलोर में जैविक रसायन के प्रोफेसर व विभागाध्यक्ष हैं। इनका कार्य मुख्य रूप से रसायन विज्ञान के क्षेत्र में हैं।

यह लेख *स्रोत* पत्रिका के अंक - मई 2003 से साभार।